R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

मूल्य-4 रुपये, वर्ष-21, अङ्क-2 फरवरी 2021 1

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ०प्र०) का
मासिक मुख समाचार पत्र

मङ्गलायतन

फरवरी का E - अंक

शाश्वत तीर्थधाम : सम्मेदशिखर→

तीर्थराज सम्मेदशिखर 'शाश्वत सिद्धक्षेत्र' कहलाता है,क्योंकि यहाँ से भूतकाल में भरतक्षेत्र के अनन्त तीर्थङ्कर निर्वाण को प्राप्त हुए हैं और भविष्यकाल में भी अनन्तानन्त तीर्थङ्कर मोक्ष जायेंगे। हुण्डावसर्पिणीकाल के कारण वर्तमान चौबीसी में यहाँ से मात्र बीस तीर्थङ्कर ही निर्वाण को प्राप्त हुए। इनके अलावा अन्य भी उनेक भगवन्त 'सम्मेदशिखर' से मुक्ति को प्राप्त हुए हैं। यह सिद्धक्षेत्र,भारतवर्ष के बिहार प्रान्त में ईसरी के पास गिरिडीह नामक नगर के निकट स्थित है। यह पर्वतराज ४० वर्ग किलोमीटर में फैला हुआ है। इसकी वन्दना से लगभग ३० किलोमीटर की यात्रा हो जाती है। हमें आत्मकल्याण की भावना से अनन्त तीर्थङ्करों की निर्वाणभूमि स्वरुप इस शाश्वत तीर्थधाम के दर्शन एवं वन्दना अवश्य करनी चाहिए।

भावसहित वन्दे जो कोई, ताहि नरक-पशु गति नहीं होई।

वैराग्य वर्षा

कोई विकराल सिंह झपट्टा मारता हुआ अपनी पीछे आ रहा हो तो स्वयं कैसी दौड़ लगायेगा ? क्या वहाँ श्वास लेने के लिये भी खड़ा रहेगा ? उसी प्रकार यह कालरूपी सिंह झपट्टा मारता हुआ पीछे दौड़ता आ रहा है और आत्महित के अनेक कार्य करना हैं – ऐसा उसे निरन्तर लगना चाहिए।

किसी आदमी को फाँसी की सजा हुई हो, और जब उसे फाँसी के तख्ते पर ले जाते हैं, तब वह भयभीत होकर कैसा काँपने लगता है ! उसी प्रकार जो संसार के दुःखों से भयभीत हुए हों, उन्हें आत्महित कर लेने की यह बात है।

मरण तो आना ही है, तब सब कुछ छूट जाएगा। बाहर की एक वस्तु छोड़ने में तुझे दुःख होता है तो बाहर के समस्त द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव एक साथ छूटने पर तुझे कितना दुःख होगा ? मरण की वेदना भी कितनी होगी ? 'कोई मुझे बचाओ' — ऐसा तेरा हृदय पुकारता होगा, परन्तु क्या कोई तुझे बचा सकेगा ?

तू भले ही धन के ढेर लगा दे, वैद्य-डाक्टर भले सर्व प्रयत्न कर लें, आस पास खड़े हुए अनेक सगे-सम्बन्धियों की ओर तू भले ही दीनता से टुकुर-टुकुर देखता रहे, तथापि क्या कोई तुझे शरणभूत हो — ऐसा है ?

यदि तूने शाश्वत स्वयं रक्षित ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा की प्रतीति-अनुभूति करके आत्म-आराधना की होगी, आत्मा में से शान्ति प्रगट की होगी तो वह एक ही तुझे शरण देगी; इसलिए अभी से वह प्रयत्न कर। 'सिर पर मौत मँडरा रही है' — ऐसा बारम्बार स्मरण में लाकर तू पुरुषार्थ जगा कि जिससे 'अब हम अमर भये, न मरेंगे' — ऐसे भाव में तू समाधिपूर्वक देहत्याग कर सके।

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-21, अङ्क-2 (वी.नि.सं. 2547; वि.सं. 2077) फरवरी 2021

अनन्त चतुष्टयवंत हुये......

अनन्त चतुष्टयवंत हुये, कैवल्य भानु उदित हुआ
प्रभु मुक्ति रमा के कंत हुऐ, अब ज्ञान कल्याणक आ गया ।।टेक ।।

समवशरण में स्वर्णकमल पर, पद्मासन विराजित हैं,
ओंकारमयी वाणी सुनने, बारह सभाऐं सुशोभित हैं,
प्रभु अतिशय-2 महिमावंत हुए, अब ज्ञान कल्याणक आ गया,
अनंत चतुष्टय.......... ।।1 ।।

चार घातिया कर्म नाश, अरिहंत अवस्था आई है,
ओंकारध्वनि अमृत वर्षा की, मंगल घड़िया लाई हैं,
प्रभु आज-2 श्री अरिहंत हुये, अब ज्ञान कल्याणक आ गया,
अनंत चतुष्टय.......... ।।2 ।।

भूत भविष्यत वर्तमान सब, वर्तमानवत् जान रहे,
कैवल्य कला की महिमा से, किंचित न अपना मान रहे,
केवल ज्ञानी-2 भगवंत हुये, अब ज्ञान कल्याणक आ गया,
अनंत चतुष्टय.......... ।।3 ।।

साभार : मंगल भक्ति सुमन

संस्थापक सम्पादक
स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़

मुख्य सलाहकार
श्री बिजेन्द्रकुमार जैन, अलीगढ़

सम्पादक
डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन

सह सम्पादक
पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन

सम्पादक मण्डल
ब्रह्मचारी पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्रीमती बीना जैन, देहरादून

सम्पादकीय सलाहकार
पण्डित रतनचन्द भारिल्ल, जयपुर
पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन

मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़

अङ्क के प्रकाशन में सहयोग
श्रीमती मंगलाबेन
नानालाल पारेख
ए-7, विवेकानन्द पार्क-3, डॉ. अम्बेडकर रोड, नेहरू मेमोरियल हॉल के सामने,
पूना - 411001 (महा.)

क्या - कहाँ

भगवान कथित नवतत्त्व 5
हे शिष्य ! तू ऐसे आत्मा की.... 8
चिदानन्द भगवान की स्तुति,.... 20
प्रेरक-प्रसंग.... 26
आचार्यदेव परिचय शृंखला.... 28
जिस प्रकार - उसी प्रकार.... 31
समाचार-दर्शन 32

शुल्क :
वार्षिक : 50.00 रुपये
एक प्रति : 04.00 रुपये

(पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के केवलज्ञान कल्याणक प्रवचन से)

भगवान कथित नवतत्त्व

भगवान ने केवलज्ञान में सम्पूर्ण विश्व को प्रत्यक्ष देखा, उसमें छह प्रकार के द्रव्य देखे, एक जीव और पाँच प्रकार के अजीव। जीव और अजीवतत्त्व त्रिकाली है और उनके परस्पर संबंध से अन्य सात तत्त्व होते हैं। वे क्षणिक हैं। इस प्रकार कुल नवतत्त्व हैं – जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष।

जीव अपना हित करना चाहता है। हित किसका करना है ? अपने आत्मा का। जगत में जो वस्तु सत् हो, उसका हित होता है अर्थात् जिसका हित करना है, ऐसा अपना आत्मा है, इसप्रकार अपने आत्मा का अस्तित्व निश्चित करना चाहिए, तथा जिन्होंने अपना हित कर लिया है और जिन्होंने अपना हित नहीं किया, ऐसे अपने अतिरिक्त अन्य आत्मा इस जगत में हैं – ऐसा जानना चाहिए। स्वयं अपना हित करना चाहता है, इसका अर्थ यह भी हुआ कि अभी तक अहित किया है। अपने स्वभाव के लक्ष से अहित नहीं होता, किन्तु स्वभाव से विरुद्ध अल्प वस्तुओं के लक्ष से अहित हुआ है। इसलिए जीव के अतिरिक्त अन्य अजीव वस्तुएँ भी हैं। जिस वस्तु में जानने की शक्ति है, वह जीव है और जिसमें जानने की शक्ति नहीं है, वह अजीव है। जीव की पर्याय में जो विकार होता है, उसमें अजीव कर्म निमित्त है। जीव की पर्याय में मलिनता के चार प्रकार पड़ते हैं – पुण्य, पाप, आस्रव और बंध। उसमें निमित्तरूप कर्म में भी यह चार प्रकार का है तथा अपने स्वभाव का भान करके उसे ओर परिणमित होने से शुद्धता होती है। उस शुद्धता के तीन प्रकार हैं – संवर, निर्जरा और मोक्ष। उसमें कर्म का अभाव निमित्तरूप है। इसप्रकार जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। कुल नवतत्त्व भगवान ने कहे हैं। इनमें से एक भी तत्त्व कम नहीं हो सकता और न इन नव के अतिरिक्त अन्य कोई दसवाँ तत्त्व

जगत में हो सकता है। यदि इन नवतत्त्वों को न माना जाये तो कुछ भी वस्तुस्थिति सिद्ध ही नहीं हो सकती।

हे भाई ! तू जीव है, ऐसा कहते ही 'तेरे अतिरिक्त अन्य अजीव पदार्थ हैं, वह तू नहीं है' – ऐसा उसमें आ जाता है, इसलिए 'जीव है' ऐसा कहते ही अनेकान्त के बल से 'अजीव' भी सिद्ध हो जाता है। 'अनेकान्त' भगवान के शासन का अमोघ मंत्र है, उस अनेकान्त के द्वारा सम्पूर्ण वस्तुस्वभाव जाना जाता है। अनेक लोग अनेकान्त का यथार्थ स्वरूप समझे बिना, अनेकान्त के नाम से गड़बड़ करते हैं। अनेकान्त तो प्रत्येक तत्त्व की स्वतंत्रता बतलाता है और पर से पृथक्त्व बतलाकर स्वभाव की ओर ले जाता है।

जीव और अजीव – यह दो मूल द्रव्य अनादि-अनंत निज-निज स्वरूप से पृथक्-पृथक् हैं। वे सर्वथा नित्य नहीं हैं किन्तु नित्य-अनित्यस्वरूप है, वस्तुरूप से स्थायी रहकर अपनी अवस्था बदलते हैं अर्थात् उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप हैं। उनमें जीव जब पर के आश्रय से उत्पन्न होता है, तब उसकी पर्याय में पुण्य-पाप-आस्रव और बंध की उत्पत्ति होती है और जब स्वभाव का आश्रय करके उत्पन्न होता है, तब संवर-निर्जरा और मोक्ष की उत्पत्ति होती है। इसप्रकार जगत में जीवादि नवतत्त्व हैं। भगवान ने पूर्ण ज्ञान में उन नव तत्त्वों को देखा है, दिव्यध्वनि द्वारा वे नवतत्त्व कहे हैं और सच्चे श्रोताजन उन नवतत्त्वों का स्वरूप समझ कर अपने स्वभाव की ओर उन्मुख हुए। स्वभावोन्मुख होने से उनकी पर्याय में से पुण्य-पाप-आस्रव और बंधरूप विकारी तत्त्वों का अभाव होने लगा और संवर-निर्जरा तथा मोक्षरूप निर्मल तत्त्वों की उत्पत्ति होने लगी। इसका नाम धर्म है और यही हित का उपाय है।

आत्मा आनंदस्वभाव से परिपूर्ण है, किन्तु अज्ञानी को उसका भान नहीं है, इसलिए अवस्था में मलिनता है और उस मलिनता में परवस्तु निमित्त है। यदि अवस्था में होनेवाली मलिनता को और परवस्तु को न माने तो वह अभिप्राय यथार्थ नहीं है। इस जगत में मात्र अद्वैत आत्मा ही है – ऐसा जो

माने, उसे तो पर से और विकार से भेदज्ञान करके अंतर-स्वभावोन्मुख होना भी नहीं रहता। यदि पर को और विकार को जाने तो पर से भिन्नत्व का भान करके और क्षणिक विकार का आश्रय छोड़कर अभेदस्वभाव के आश्रय से भेदज्ञान (आत्मज्ञान) और सम्यक्चारित्र होकर मुक्ति होती है। 'आत्मा का हित करना है' – इसमें यह सारी बात आ जाती है। यह सब स्वीकार किए बिना आत्मा का हित करने की बात ही नहीं रहती।

जगत में जो छह द्रव्य अथवा नवतत्त्व स्वयंसिद्ध हैं, वे ही भगवान ने ज्ञान में जानकर कहे हैं, किन्तु भगवान ने कहीं किसी तत्त्व को नया नहीं बनाया है और भगवान ने कहे इसलिए वे तत्त्व हैं – ऐसा भी नहीं है और वे तत्त्व हैं, इसलिए उनके कारण भगवान को ज्ञान हुआ – ऐसा भी नहीं है। जगत के तत्त्व स्वतंत्र हैं और भगवान का ज्ञान भी स्वतंत्र है। मात्र ज्ञेयज्ञायक स्वभाव ऐसा है कि जैसा ज्ञेय पदार्थों का स्वभाव हो, वैसा ही ज्ञान में ज्ञात होता है। एक तत्त्व दूसरे तत्त्व का कुछ नहीं करता। भगवान आत्मा चिदानन्द शुद्ध स्वभावी हैं, वही पर का कुछ नहीं करता।

यदि 'जीव' न हो तो कल्याण किसका करना !

यदि 'अजीव' न हो तो जीव की पर्याय में भूल कैसे हो ?

यदि जीव की पर्याय में पराश्रय से होनेवाला 'विकार' न हो तो कल्याण करना ही क्यों रहे ?

यदि स्वाश्रय से वह विकारदशा दूर होकर 'अविकारी दशा' न होती हो तो कल्याण कहाँ से हो ?

इसलिए जीव है, अजीव है, अजीव के आश्रय से जीव की पर्याय में विकार है और अपने स्वभाव के आश्रय से वह विकार दूर होकर निर्मल दशा होती है। इसप्रकार जीव, अजीव, विकार और स्वभाव – इन चारों पक्षों को बराबर जानकर स्वभाव का आश्रय करे तो अधर्म दूर होकर धर्म होता है। इसमें नवों तत्त्वों का समावेश हो जाता है।

[आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष 7, अंक 6]

'हे शिष्य ! तू ऐसे आत्मा की श्रद्धा कर!'

(पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का श्री समयसार, गाथा 49 पर भाववाही प्रवचन)

जिज्ञासु शिष्य ने ऐसा प्रश्न पूछा है कि रागादिभाव हैं, वह जीव नहीं हैं तो एक टंकोत्कीर्ण, परमार्थस्वरूप जीव कैसा है ? उसका लक्षण क्या है ? उसके उत्तर में भी आचार्यदेव इस गाथा में जीव के परमार्थस्वरूप का वर्णन करते हैं। आत्मा के ऐसे परमार्थस्वरूप को जानकर उसकी श्रद्धा करने से ही सम्यग्दर्शन होता है।

'छह द्रव्यस्वरूप लोक ज्ञेय है और व्यक्त है, उससे जीव अन्य है; इसलिए अव्यक्त है।' समस्त लोक अपने से बाह्य हैं, इसलिए वह व्यक्त है और लोक अपेक्षा स्वयं अंतरतत्त्व है इसलिए आत्मा अव्यक्त है। उस अव्यक्त स्वभाव को प्रतीति में लेने से परमार्थ आत्मा की प्रतीति होती है। बाह्य तत्त्वों को व्यक्त कहा और ज्ञायक – ऐसा जो अंतरतत्त्व है, उसे अव्यक्त कहा।

यद्यपि आत्मा स्वयं अपना स्वज्ञेय है, किन्तु वह स्वज्ञेय कब होता है ? जब अंतर में ज्ञायक –स्वभाव की ओर उन्मुख हो, तभी स्वयं अपना स्वज्ञेय होता है। एक समय की व्यक्त पर्याय में त्रिकाली तत्त्व सम्पूर्ण नहीं आ जाता, किंतु एक समय की पर्याय में त्रिकाली तत्त्व ज्ञात अवश्य होता है। सम्पूर्ण तत्त्व ज्ञान में ज्ञात हो जाता है, इस अपेक्षा से व्यक्त कहा जा सकता है किन्तु एक समय की व्यक्त पर्याय में वह पूर्ण तत्त्व प्रगट नहीं हो जाता, इसलिए भगवान आत्मा अव्यक्त है। एक समय की व्यक्त पर्याय की प्रतीति करने से सम्पूर्ण आत्मा प्रतीति में नहीं आता, इसलिए आत्मा अव्यक्त है – ऐसे आत्मा की प्रतीति करना, सो सम्यग्दर्शन है।

आत्मा वर्तमान एक समय में ही त्रिकाली सामर्थ्य से पूर्ण है, वह शक्तिरूप होने से अव्यक्त है। व्यक्त ऐसी पर्याय की दृष्टि छुड़ाकर पूर्ण

स्वभावशक्ति की दृष्टि कराने के लिए कहा है कि भगवान आत्मा अव्यक्त है। उस अव्यक्त की श्रद्धा करनेवाली तो वर्तमान व्यक्त पर्याय है, कहीं अव्यक्त द्वारा अव्यक्त की श्रद्धा नहीं होती, किन्तु व्यक्त द्वारा अव्यक्त की श्रद्धा होती है। वे अव्यक्त और व्यक्त दोनों वर्तमान में ही हैं।

वस्तु के स्वभाव को श्रद्धा में ले तो सम्यग्दर्शन हो। वह श्रद्धा करनेवाली वर्तमान पर्याय है और जिसकी श्रद्धा करना है, वह वस्तु भी वर्तमान में ही है। वर्तमान पर्याय द्वारा श्रद्धा होती है तो उस श्रद्धा का कारण भी वर्तमान में ही होना चाहिए। जिसप्रकार श्रद्धा वर्तमान में ही पूर्ण न हो तो उन दोनों की एकता कहाँ से हो ? त्रिकाली शक्ति का पिण्ड ध्रुव चैतन्यबिम्ब वर्तमान में परिपूर्ण और अव्यक्त है, वह श्रद्धा का विषय है और उसकी श्रद्धा, सो सम्यग्दर्शन है। श्रद्धा कार्य है और ध्रुवद्रव्य उसका परमार्थ कारण है। वे दोनों वर्तमान में ही हैं। यदि श्रद्धा का परमार्थ कारण (श्रद्धा का विषय) वर्तमान में परिपूर्ण न हो तो सम्यग्दर्शनरूप कार्य भी नहीं हो सकता। श्रद्धापर्याय व्यक्त है और पूर्ण द्रव्य वर्तमान वर्तता हुआ अव्यक्त है, उस अव्यक्त के आधार से होनेवाले व्यक्त द्वारा अव्यक्त द्रव्य की प्रतीति होती है। श्रद्धा स्वयं वर्तमान और जिसकी श्रद्धा करना हो, वह यदि वर्तमान न हो तो उसकी श्रद्धा ही कैसे हो ? सम्पूर्ण वस्तु वर्तमान अव्यक्त (शक्तिरूप) पड़ी है, उसकी श्रद्धा करने में किसी परद्रव्य की या राग की तो अपेक्षा नहीं है किन्तु वह वर्तमान वर्तता हुआ स्वद्रव्य स्वयं ही श्रद्धा का परमार्थ कारण है, उसी के आश्रय से परमार्थश्रद्धा होती है। वह कारण यदि वर्तमान में न हो तो श्रद्धारूप कार्य भी वर्तमान में कहाँ से हो ? यदि पूर्ण द्रव्य वर्तमान ही विद्यमान न हो तो श्रद्धा काहे में लक्ष करके स्थिर रहेगी ? श्रद्धा को किसका आधार ? श्रद्धा का आधार द्रव्य है, वह पूर्ण द्रव्य वर्तमान में ही है, उसकी ओर उन्मुख होकर उसकी प्रतीति करने से सम्यक्श्रद्धा होती है। इसीप्रकार सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रादि भी वर्तमान पूर्ण द्रव्य के आश्रय से ही होते हैं। कार्य वर्तमानरूप है, उसीप्रकार उसका

परमार्थकारण भी वर्तमान में ही शक्तिरूप से पूर्ण है। इससे, अपने सम्यक्श्रद्धा आदि गुण प्रगट करने के लिए कहीं बाह्य में देव-गुरु-शास्त्र आदि के समक्ष-नहीं देखना पड़ता, किन्तु अपना स्वभाव ही वर्तमान पूर्ण विद्यमान है, उसमें अंतरमुख होकर उसका आश्रय करने से सम्यकश्रद्धा आदि प्रगट होते हैं।

सम्पूर्ण लोक के समस्त ज्ञेयों को ज्ञायक अंतरतत्त्व से भिन्न जानकर, अंतरस्वभावोन्मुख होकर आत्मा की प्रतीति करे तो अव्यक्त आत्मा की श्रद्धा हुई कहलाये।

इसप्रकार अव्यक्त का प्रथम बोल कहा।

अब, अव्यक्त का दूसरा बोल कहते हैं -

'कषायों का समूह जो भावकभाव व्यक्त है, उससे जीव अन्य है, इसलिए अव्यक्त है।' आत्मा की क्षणिक अवस्था में जो कषायभाव हो, उससे भी आत्मा का स्वभाव पृथक् है, तब फिर परवस्तु से आत्मा पृथक् है - यह बात तो उसमें आ ही जाती है। कषायभावों से आत्मा पृथक् है - ऐसा कहते ही निमित्तादि परद्रव्यों की उपेक्षा करके आत्मा की ओर उन्मुख होना ही आया, क्योंकि कषायभाव सदैव परद्रव्य के अवलम्बन से ही होते हैं। कषायभाव बाह्य पदार्थ के अवलम्बन द्वारा होते हैं, इसलिए उन्हें व्यक्त कहा, आत्मा के अंतर स्वभाव के आश्रय से कषायभाव की उत्पत्ति नहीं होती, इसलिए वह अव्यक्त है। कषायभावों से जीव अन्य है - ऐसा यहाँ कहा, उसमें स्वद्रव्योन्मुख होना ही आता है।

देखो, वीतरागता शास्त्रों का प्रयोजन है; राग हो, वह शास्त्रों का तात्पर्य नहीं है। अब, 'राग तात्पर्य नहीं है' ऐसा कहते ही परद्रव्य के आलम्बन की उपेक्षा करना ही आ जाता है, क्योंकि परद्रव्य के अवलम्बन से ही राग होता है। वीतरागता तो स्वद्रव्य के अवलम्बन से होती है। इसलिए वीतरागता को तात्पर्य कहा, उसमें परद्रव्यों से उपेक्षा करके स्वद्रव्य का अवलम्बन करना ही कहा है।

कोई ऐसा माने कि - देव-गुरु अथवा शास्त्रादि निमित्तों की उपेक्षा नहीं करना चाहिए तो वह जीव वीतरागी तात्पर्य को नहीं समझा है। वीतरागता कब होती है ? - स्वद्रव्य का आश्रय करे तब। देव-गुरु-शास्त्र भी वास्तव में तो परद्रव्य ही हैं और परद्रव्य के अवलम्बन से राग की ही उत्पत्ति होती है, इसलिए परद्रव्य का अवलम्बन नहीं छोड़ना चाहिए - उपेक्षा नहीं करना चाहिए - ऐसा जिसने माना, उसने राग को ही तात्पर्य माना है, किन्तु वीतरागता को तात्पर्य नहीं माना। जो जीव वीतरागता को तात्पर्य माने-स्वीकार करे, वह जीव परद्रव्य का अवलम्बन करने जैसा नहीं मानता। वीतरागता को ही तात्पर्य माननेवाले जीव को परद्रव्य के अवलम्बन की रुचि छूटकर स्वद्रव्य के ही अवलम्बन की रुचि होती है। इसलिए 'शास्त्र का तात्पर्य वीतरागता है' - ऐसा कहते ही उसमें 'स्वद्रव्य की अपेक्षा और समस्त परद्रव्य से उपेक्षा' करना आ ही जाता है।

वीतरागता को तात्पर्य कहते ही, उस वीतरागता से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों का समावेश हो जाता है। सम्यग्दर्शन भी वीतरागतावाला है और वह स्वद्रव्य के आदर से ही होता है। किन्हीं देव-गुरु आदि पर के आदर से या राग से सम्यग्दर्शन नहीं होता, किन्तु मात्र स्व-स्वभाव के आदर से ही सम्यग्दर्शन होता है। इसीप्रकार सम्यग्ज्ञान भी वीतरागभाव है और वह भी स्वद्रव्य के आदर से ही होता है और सम्यक्चारित्र भी वीतरागभाव है तथा वह भी मात्र स्वद्रव्य के अवलम्बन से ही होता है। केवलज्ञान भी स्वद्रव्य के आदर तथा आश्रय से ही होता है। पर्याय के अथवा परद्रव्य के आदर से वीतरागभाव नहीं होते, किन्तु राग ही होता है।

इसप्रकार 'वीतरागता' स्वद्रव्य का ही आदर करती है, क्योंकि स्वद्रव्य के आदर से ही वीतरागता होती है। परद्रव्य, निमित्त या पर्याय के आदर से ही वीतरागता नहीं होती किन्तु राग होता है, इसलिए उन किसी का आश्रय करना - वह तात्पर्य नहीं है। वीतरागता स्वद्रव्य के अवलम्बन का भाव है और राग परद्रव्य के अवलम्बन का भाव है। वीतरागता का कारण स्वद्रव्य

और वीतरागभावरूप कार्य – दोनों का वर्तमान में ही समावेश होता है।

वर्तमान में प्रवर्तमान पूर्ण द्रव्य, सो कारण और उस द्रव्य के आश्रय से प्रगट हुई वीतरागी पर्याय, सो कार्य, इसके अतिरिक्त परद्रव्य आत्मा का कुछ करता है या आत्मा पर का करता है – ऐसा जिसने माना, उसने वस्तु को नहीं जाना है।

(1) ईश्वर ने जीव को बनाया है – ऐसा जिसने माना उसने पूर्ण तत्त्व का कर्ता पर को माना, इसलिए सम्पूर्णतत्त्व को पराधीन माना है।

(2) ईश्वर ने जीव को बनाया है – ऐसा तो नहीं माने, किन्तु निमित्त आये वैसी पर्याय होती है – इसप्रकार जिसने वर्तमान पर्याय का कर्ता पर को माना, उसने अपने वर्तमान को स्वतंत्र नहीं माना, वर्तमान को उड़ाने से द्रव्य को भी उड़ा दिया। इसलिए उसकी श्रद्धा भी मिथ्या है।

(3) रागादिभाव परनिमित्त से होते हैं – ऐसा न माने किन्तु, अपनी योग्यता से रागादि होते हैं – ऐसा माने, परन्तु उस राग जितना ही आत्मा को माने अर्थात् राग से लाभ माने तो उसने भी लाभ के कारणरूप ऐसे सम्पूर्ण द्रव्य को उड़ा दिया क्योंकि लाभ कार्य तो द्रव्य के आश्रय से होता है, उसे न मानकर राग के आश्रय से लाभ माना तो उसकी मान्यता में राग ने ही सम्पूर्ण द्रव्य का कार्य किया, इसलिए राग के अतिरिक्त दूसरा द्रव्य नहीं रहा।

– इसप्रकार यथार्थ तत्त्व से कुछ भी उलटा-सीधा मानने से सारा तत्त्व ही उड़ जाता है, यानि तत्त्व की मिथ्याश्रद्धा होती है।

यहाँ 'अव्यक्त' विशेषण द्वारा आत्मा का परमार्थ स्वरूप बतलाते हैं। सत्स्वभावी आत्मतत्त्व की भावना के लिए कषाय काम में नहीं आती। अशुभ और शुभ, यह दोनों भाव कषाय के ही प्रकार हैं। आत्मा त्रिकाली सामर्थ्यवाला है और कषाय एक क्षण रहनेवाली है, आत्मद्रव्य कषाय से पृथक् है, इसलिए द्रव्यस्वभाव की भावना से कषाय नष्ट हो जाती है।

परवस्तु से या परवस्तु के लक्ष से होनेवाले कषाय भावों से आत्मा का परमार्थस्वरूप अनुभव में नहीं आता, इसलिए स्वद्रव्य अपेक्षा करने योग्य

है और परद्रव्य उपेक्षा करने योग्य है। कषाय परद्रव्य के लक्ष से होती है, इसलिए उससे स्वद्रव्य पृथक् है। स्वद्रव्य ही सम्यक्त्वादि का बीज है। परद्रव्य के आश्रय से कषाय होती है और स्वद्रव्य के आश्रय से वीतरागता होती है।

'जिसकी भावना से जो भाव हो, वह भाव उसी का है।' स्वद्रव्य की भावना से जो भाव हो, वह भाव स्वद्रव्य का है, वह वीतरागी भाव है और परद्रव्य की भावना से जो भाव हो, वह परमार्थ से परद्रव्य का है–वह रागभाव है। इसप्रकार दो ही विभाग करके राग की गणना भी परद्रव्य में कर दी। रागभाव वास्तव में स्वद्रव्य का स्वभाव नहीं है, इसलिए स्वभावदृष्टि से तो वह परद्रव्य का ही भाव है।

शास्त्र का तात्पर्य वीतरागता है, उस वीतरागतारूप से परिणमित होनेवाला द्रव्य है। राग की भावना करने से द्रव्य वीतरागतारूप परिणमित नहीं होता, किन्तु द्रव्य की भावना करने से ही वह वीतरागतारूप परिणमित होता है। वीतराग पार्याय के आश्रय से वीतरागता नहीं होती किन्तु द्रव्य के आश्रय से वीतरागी पर्याय होती है। पर्याय तो क्षणिक है और द्रव्य ध्रुव है। जो ध्रुव स्थायी वस्तु हो, उसकी भावना भायी जाती है।

स्वद्रव्य की भावना करे तो उस ओर उन्मुख होकर एकाग्र हुआ जा सकता है और वीतराग भाव प्रगट होता है। परद्रव्य की या पर्याय की भावना करे तो उससे स्वद्रव्योन्मुख नहीं हुआ जाता किन्तु रागभाव ही होता है। इसलिए हे भाई ! तू स्वद्रव्य के अवलम्बन की ओर ढलकर स्वद्रव्य को ही वीतरागता का कारण बना। सर्व शास्त्रों का प्रयोजन वीतरागता है, उस वीतरागता की साधना स्वद्रव्य के आश्रय से ही होती है, इसलिए स्वद्रव्य का आश्रय ही सर्व शास्त्रों का तात्पर्य हुआ।

पर्याय प्रगट होने का सामर्थ्य द्रव्य में है, एक पर्याय में दूसरी पर्याय को प्रगट करने का सामर्थ्य नहीं है। एक राग पर्याय में से दूसरी राग की पर्याय भी नहीं आती, तब फिर उस राग में से वीतरागता तो कहाँ से आयेगी ? पर्याय के

अवलम्बन से तो राग की ही उत्पत्ति होगी। ध्रुव द्रव्य सम्पूर्ण वर्तमान में है, उसका आश्रय करने से वह ध्रुव कारण होकर उसमें से वीतरागी पर्याय होती रहेगी। इसप्रकार अकेले स्वद्रव्योन्मुख होकर उसका अवलम्बन करना ही इन समस्त बोलों का तात्पर्य है।

'अव्यक्त' के छह बोलों में भिन्न-भिन्न पक्षों से वर्णन किया है, किन्तु उनका योगफल तो एक ही है, छहों प्रकार स्वद्रव्य के अवलम्बन की ओर ढलना ही बतलाते हैं। एक बोल में कुछ बतलाया और दूसरे बोल में उससे पृथक् कुछ और ही बतलाया - ऐसा नहीं है। छह बोलों के छह भिन्न-भिन्न तात्पर्य नहीं हैं, किन्तु छहों बोलों का तात्पर्य एक ही है। शैली में परिवर्तन करके भी सभी बोलों में एक स्वद्रव्य का ही अवलम्बन बतलाया है। जो स्वद्रव्य के अवलम्बन की ओर ढला, वह सभी बोलों का रहस्य समझ गया।

यह तो जिसे आत्मा का कल्याण करना हो, उसके लिए अपूर्व बात है। ऐसा आत्मा समझने से ही कल्याण है। विपरीत श्रद्धा के कारण आत्मा अनादि से चौरासी के कुंए में पड़ा है, उसमें से उसे कैसे बाहर निकालना, उसकी यह बात है। प्रथम परिपूर्ण स्वभाव की यथावत् श्रद्धा करे तो उस श्रद्धा के बल से जैसे का तैसा परिपूर्ण आत्मा चौरासी के कुंए में से बाहर निकल जाये। अपने आत्मा पर दया लाकर, उसे चौरासी के अवतारूपी कुएं में से बाहर निकालने के लिए जगत की दरकार छोड़कर सर्व सामर्थ्य से भीतर उतरना योग्य है।

यहाँ 'अव्यक्त' विशेषण के छह बोलों में से आत्मा का स्वभाव समझाते हैं। उनमें से दो बोल पूर्ण हुए, अब तीसरा बोल कहते हैं -

'चित्सामान्य में चैतन्य की सर्व व्यक्तियाँ निमग्न (अंतर्भूत) हैं, इसलिए अव्यक्त हैं।' दूसरे बोल में विकारी भावों को आत्मा से अन्य कहा था और इस बोल में कहते हैं कि निर्मल पर्यायें आत्मा में अभेद होती हैं। पर्याय स्वभाव में ही एकतावाली होती है, अव्यक्त तत्त्व से उसकी पर्यायें

पृथक् नहीं होती। इसलिए व्यक्त पर्याय के भेदों से द्रव्य का भेदन नहीं हो जाता, इससे आत्मा अव्यक्त है। इसलिए पर्याय को अलग करके पर्याय को देखना नहीं रहता, किन्तु द्रव्य में ही देखता रहता है।

वस्तु नित्य स्थायी रहकर परिणमित होती है। यदि वस्तु परिणमित न होती हो तो यह श्रद्धा-ज्ञानादि परिणाम ही सिद्ध न हों। चैतन्यशक्ति कारण है और निर्मल पर्याय कार्य है, वे कारण-कार्य परमार्थतः भिन्न नहीं हैं, क्योंकि पर्यायें द्रव्य में ही अंतर्भूत होती हैं। और श्रद्धा-ज्ञान आदि पर्यायरूप कार्य वर्तमान व्यक्त है तो उसके कारणरूप अव्यक्त द्रव्य भी वर्तमान ही होना चाहिए।

श्रद्धापर्याय प्रगट हुई तो उस श्रद्धा का पूरा कारण वर्तमान में है।

ज्ञानपर्याय व्यक्त हुई तो उस ज्ञान का कारण पूर्ण ज्ञानशक्ति वर्तमान में है।

आनंद प्रगट हुआ तो उस आनंद के कारणरूप पूर्ण आनंदस्वभाव है।

इसप्रकार अनंतशक्ति का पिण्ड परिपूर्ण स्वभाव है, वह अप्रगट है-अव्यक्त है-सामान्यरूप है और पर्यायें प्रगट हैं-व्यक्त हैं-विशेषरूप हैं। समान्यस्वभाव में ही समस्त पर्यायें अंतर्मग्न होती हैं, इसलिए वे कारण और कार्य पृथक् नहीं होते। व्यक्तपर्याय जितना तत्त्व नहीं है। किन्तु पूर्ण अव्यक्त चैतन्यतत्त्व है, वही त्रिकाल एकरूप परमार्थ जीवतत्त्व है। 'त्रिकाल' कहने से 'वर्तमान पूर्ण' - इसप्रकार पूर्णता बतलाता है किन्तु काल का विस्तार नहीं बतलाना है। तीनों काल के सामर्थ्य का पिण्ड वर्तमान में है, वस्तु 'वर्तमान पूर्ण' है, उसे यहाँ अव्यक्त कहा है।

वर्तमान में पूर्ण-अखण्ड है - ऐसी दृष्टि कर! 'यह राग है, इसके फलस्वरूप स्वर्ग की प्राप्ति होगी और भगवान के पास पहुँचेंगे - ऐसा तो मत देख, किन्तु वर्तमान साधक पर्याय है और मोक्षपर्याय भविष्य में होगी - ऐसे पर्याय के भेद को भी मुख्यरूप से न देख, पूर्ण तत्त्व वर्तमान अव्यक्त है,

उसके सन्मुख देख, उसकी प्रतीति कर।

1. ज्ञेय व्यक्त है, उनसे ज्ञायक तत्त्व भिन्न है, इसलिए अव्यक्त है।

2. विकारी भाव व्यक्त हैं, उनसे ज्ञायकतत्त्व भिन्न हैं, इसलिए अव्यक्त हैं।

3. पर्याय व्यक्त है, वह द्रव्य में ही निमग्न होने से आत्मा अव्यक्त है।

– इसप्रकार अव्यक्त के तीन बोल हुए।

अब चौथा बोल कहते हैं –

'क्षणिक व्यक्तिमात्र नहीं है, इसलिए अव्यक्त है।'

देखो, आचार्यदेव ने द्रव्य और पर्याय – दोनों को इकट्ठा रखकर बात की है। क्षणिक व्यक्ति, सो पर्याय है, उसे न माने और तत्त्व को सर्वथा कूटस्थ ही माने तो वह स्थूल भूल है। पर्याय है अवश्य, किन्तु उस क्षणिक पर्याय जितना ही पूर्ण तत्त्व नहीं है। यदि क्षणिक व्यक्ति को न माने तो वह सम्पूर्ण अव्यक्त आत्मा को नहीं मान सकेगा और यदि क्षणिक व्यक्ति जितना ही मानकर सम्पूर्ण अव्यक्तस्वभाव को न माने तो उसे भी पूर्ण तत्त्व प्रतीति में नहीं आयेगा। पूर्ण तत्त्व को प्रतीति में लिये बिना सच्ची श्रद्धा या धर्म नहीं होते।

यह समझे बिना परमार्थ से केवली भगवान को भी माना नहीं कहा जा सकता। देखो, केवली कौन है ? केवल अर्थात् मात्र स्वद्रव्य के अवलम्बन से जिसके पूर्ण पर्याय व्यक्त हो गई, वह केवली है। वह पूर्ण पर्याय कहाँ से आई ? पूर्ण शक्ति में से। इसलिए पर्याय को न माने तो वह केवली को यथार्थ नहीं मान सकता।

प्रत्येक समय की पर्याय प्रकट होती है, वह व्यक्त है, उस पर्याय में सम्पूर्ण द्रव्य प्रगट नहीं हो जाता किन्तु यह तो शक्तिरूप रहता है, इसलिए वह अव्यक्त है। यदि क्षणिक पर्याय में ही सम्पूर्ण तत्त्व प्रगट हो जाये, तो फिर दूसरे क्षण जो पर्याय होती है, वह कहाँ से आयेगी ? दूसरे क्षण तो तत्त्व का नाश हो जायेगा। इसलिए क्षणिक पर्याय जितना ही आत्मा नहीं है,

किन्तु भगवान आत्मा अव्यक्त है। आत्मा को 'अव्यक्त' कहा, उसका अर्थ ऐसा नहीं समझना कि वह ज्ञान में ज्ञात नहीं होता है, इसलिए उस अपेक्षा से तो ज्ञान में वह व्यक्त है, किन्तु क्षणिक पर्याय में आप सम्पूर्ण नहीं आ जाता, इसलिए उसे अव्यक्त विशेषण से पहिचाना जाता है।

पर्याय है, तभी तो 'पर्याय जितना आत्मा नहीं है' – ऐसा कहा है, जो पर्याय को सर्वथा ही न माने, उसे तो 'आत्मा पर्याय जितना नहीं है' – ऐसा कहना भी नहीं रहता। पर्याय है तो अवश्य, किन्तु उस पर्यायबुद्धि से देखनेवाले के सम्पूर्ण वस्तु दृष्टि में नहीं आती। इसलिए पर्याय की बुद्धि छुड़ाकर वस्तु की दृष्टि कराने के लिए कहा है कि आत्मा क्षणिक पर्यायमात्र नहीं है। सम्पूर्ण वस्तु अव्यक्त है, उस वस्तु की दृष्टि करो। पर्याय तो क्षणिक परिवर्तित होती है, उसके आश्रय से तो क्षणिक व्यक्ति की ही प्रतीति होगी किन्तु सम्पूर्ण तत्त्व प्रतीति में नहीं आयेगा क्योंकि तत्त्व क्षणिक व्यक्तिमात्र नहीं है, एक पर्याय पर से लक्ष हट जाने पर भी अंतर में द्रव्य का अवलम्बन नहीं छूटता, इसलिए आत्मा क्षणिक पर्याय जितना व्यक्त नहीं है किन्तु अव्यक्त है। ऐसे त्रिकाली सम्पूर्ण अव्यक्त आत्मा की प्रतीति करना ही सम्यक्श्रद्धा है।

इसप्रकार 'अव्यक्त' का चौथा प्रकार हुआ।

अब अव्यक्त का पाँचवाँ प्रकार समझाते हैं –

'व्यक्तपना तथा अव्यक्तपना एक साथ मिश्रितरूप से प्रतिभासित होने पर भी वह केवल व्यक्तपने को स्पर्श नहीं करता, इसलिए अव्यक्त है।' वर्तमान व्यक्त पर्याय कार्य है और ध्रुव अव्यक्त कारण है, यह कारण और कार्य दोनों वर्तमान में एकसाथ हैं, उनके कालभेद नहीं हैं और उन दोनों के ज्ञान का भी कालभेद नहीं है। द्रव्य-पर्याय दोनों एकसाथ हैं और ज्ञान में वे दोनों एकसाथ प्रतिभासित होते हैं, दोनों एक साथ ज्ञात होने पर भी, मात्र पर्याय को नहीं जानता, इसलिए आत्मा अव्यक्त है।

वस्तु में व्यक्तपना और अव्यक्तपना – दोनों एकसाथ हैं और ज्ञानपर्याय में द्रव्य-पर्याय दोनों को एकसाथ जानने का सामर्थ्य है। एक पर्याय के सामर्थ्य को जानने से द्रव्य-पर्याय दोनों का ज्ञान भी साथ ही आ जाता है, तथापि अकेली पर्याय को ही नहीं जानता, किन्तु द्रव्य के ज्ञानसहित पर्याय का ज्ञान करता है। देखो, सम्यक्श्रद्धा-ज्ञान पर्याय है, वह सम्पूर्ण द्रव्य को स्वीकार करती है, इसलिए उस पर्याय को जानने से उसके विषयरूप सम्पूर्ण द्रव्य का ज्ञान भी उसमें आ जाता है, परन्तु उससे 'ज्ञान मात्र व्यक्त पर्याय को ही जानता है और अव्यक्त द्रव्य को नहीं जानता' – ऐसा नहीं है। ज्ञान तो अव्यक्त द्रव्य और व्यक्त पर्याय – दोनों को जानता है। ज्ञान में द्रव्य-पर्याय दोनों एकसाथ ज्ञात होने पर भी, वह ज्ञान अव्यक्त द्रव्य की ओर उन्मुख होकर उस द्रव्य के ज्ञानसहित पर्याय को जानता है। अकेली, व्यक्त पर्याय को जानने से परमार्थ आत्मा ज्ञात नहीं होता किन्तु अव्यक्त द्रव्य के ज्ञानसहित पर्याय को जाननेवाले ज्ञान में ही आत्मा ज्ञात होता है, इसलिए वह अव्यक्त है।

जिसप्रकार केवलज्ञान को जानने से लोकालोक के ज्ञेयों का ज्ञान भी हो जाता है, उसीप्रकार एक पर्याय के सामर्थ्य को जानने से उसमें द्रव्य-पर्याय दोनों का ज्ञान आ जाता है, तथापि मात्र पर्याय को ही आत्मा नहीं जानता, इसलिए वह अव्यक्त है। अकेली पर्याय को जानने से भगवान आत्मा का स्वरूप ज्ञात नहीं होता, किन्तु द्रव्य के ज्ञानसहित पर्याय को जाने तो भगवान आत्मा का स्वरूप ज्ञात होता है।

इसप्रकार अव्यक्त के पाँच बोल कहे, अब अन्तिम बोल कहते हैं।

'स्वयं अपने से ही बाह्य-अभ्यन्तर स्पष्ट अनुभव में आ रहा है, तथापि व्यक्तपने के प्रति उदासीनरूप से प्रद्योतमान (प्रकाशमान) है, इसलिए अव्यक्त है।'

किसी को ऐसा लगे कि पर को जानने में परसन्मुख होकर जानता

होगा। तो कहते हैं कि नहीं, पर को ही जानता होने पर भी आत्मा पर के प्रति उदासीनरूप से रहकर और स्वसन्मुख रहकर पर को जानता है। स्व को जानने से पर का भी ज्ञान हो जाता है। स्व का और पर का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है, तथापि स्वयं स्वद्रव्य की ओर ही नियतरूप से वर्तता है और व्यक्त – ऐसे पर ज्ञेयों के प्रति उदासीनरूप से वर्तता है, ज्ञेयों के अभावरूप स्वयं वर्तता है, इसलिए आत्मा अव्यक्त है।

एकसमय के प्रत्यक्ष ज्ञान में तो पूर्ण वस्तु ज्ञात हो जाती है, किन्तु एक समय की पर्याय में पूर्ण द्रव्य प्रगट नहीं हो जाता, इस अपेक्षा से भगवान आत्मा अव्यक्त है। अव्यक्त होने पर भी ज्ञान में प्रत्यक्ष है, और ज्ञान में प्रत्यक्ष होने पर भी अव्यक्त है।

छह प्रकार से अव्यक्त कहकर भगवान आत्मा को ज्ञायक बतलाया।

पहले बोल में, ज्ञेयों से पृथक् है, इसलिए अव्यक्त कहा।

दूसरे बोल में, विकार से पृथक् है, इसलिए अव्यक्त कहा।

तीसरे बोल में, पर्याय को द्रव्य में अभेद करके अव्यक्त कहा।

चौथे बोल में, क्षणिक पर्याय को पृथक् करके लक्ष में ले तो उसका निषेध करके अव्यक्त कहा।

पाँचवें बोल में, मात्र पर्याय को ही नहीं जानता, इसलिए अव्यक्त कहा।

छठवें बोल में, पर-सन्मुख रहकर पर को नहीं जानता, किन्तु पर से उदासीनरूप से प्रकाशमान है, इसलिए अव्यक्त कहा।

– इसप्रकार छह बोलों द्वारा अव्यक्त कहकर भगवान आत्मा का परमार्थस्वरूप बतलाया, वैसे आत्मा को पहिचानकर श्रद्धा करना, सो प्रथम धर्म है।

[आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष 7, अंक 6]

श्री समयसार नाटक पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
धारावाही प्रवचन

चिदानन्द भगवान की स्तुति

"वंदित्तु सव्व सिद्धे--।"

रामचन्द्रजी जब बालक थे दो वर्ष के, तब एकबार छत पर बैठे हुए थे। वहाँ से चन्द्रमा पर नजर पड़ने से वे चन्द्रमा को नीचे उतारने की चेष्टा करने लगे। रामचन्द्रजी तो तद्भव मोक्षगामी थे न! तो पूत के लक्षण तो पालने में ही दिखते हैं न! वे चन्द्र को बुलावें पर वह आवे नहीं; अत: वे रोने लगे। तब राजा दशरथ ने दीवान से रामचन्द्रजी के रोने के कारण की खोज करने को कहा। दीवान ने कहा कि मैं दीवानपना करूँ या बालक को रखूँ। अरे! यह तो महापुरुष है। भाग्यवान-पुण्यशाली है। भाग्य कोई भभूत लगने से थोड़े ही छिप जाता है। दीवान खोज करने जाता है कि बालक क्यों रोता है, देखा... ठीक, इन्हें तो चन्द्रमा को नीचे उतारना है; परन्तु वह कैसे उतरे ?नीचे जाकर दर्पण ले आये, उसमें चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब राम को बतलाकर दर्पण उनकी जेब में रख दिया। बस, राम चुप हो गये। वैसे ही आत्मा जब सिद्धभगवान को याद करता है, तब सिद्ध तो नीचे नहीं आते; परन्तु सिद्धसमान अपने आत्मा की अनुभूति करता है। वह जानता है कि सिद्धभगवान मेरे हृदय में (ज्ञान में) आ गये ऐसा लगता है। 'मैं ही सिद्धसमान हूँ।' मेरा स्वरूप सिद्ध जैसा है ऐसा अनुभव करते हुए स्वयं सिद्ध हो जाता है।

सिद्धभगवान को महासुखसागर विश्रामी कहा है, परन्तु सागर तो अल्प योजन के विस्तारवाला होता है और सिद्ध को तो अनन्त..अनन्त..अनन्त आनन्द का सागर पर्याय में उछलता है। सागर के मध्य में से ज्वार आता है; वैसे ही द्रव्य में जो आनन्द है, उसकी पर्याय में भरती (ज्वार) आती है।

'सो सिवरूप बसे सिवथानक' ऊपर शिवस्थान है, वहाँ सिद्धभगवान बसते हैं। वहाँ बँगले नहीं है। बँगले, लाड़ी, गाड़ी, घोड़ी आदि कुछ वहाँ नहीं है। परवस्तु के लक्ष्य से जो आकुलता उत्पन्न होती थी, उसका नाश

करके अनाकुलता उत्पन्न हुई है, उसे अब परवस्तु से क्या काम ? अपना अनन्त आनन्द सागर उछलता है, उसका अनुभव करते हैं। उन्हें बाह्य वस्तु की आवश्यकता नहीं है। वे तो अपने असंख्य प्रदेशों में रहते हैं।

सिद्धभगवान मोक्षरूप हैं, मोक्षपुरी के निवासी हैं, उन्हें मोक्षगामी जीव ज्ञानदृष्टि से देखकर नमस्कार करता है। धर्मी जीव को सिद्धसमान अपने स्वरूप की दृष्टि हुई है और सिद्धपर्याय का ज्ञान हुआ है, उस ज्ञानदृष्टि द्वारा सिद्ध को नमस्कार करता है।

श्रीमद्जी अपूर्व अवसर काव्य में लिखते हैं न:-

सादि-अनन्त अनन्त समाधि सुख मां
अनन्त दर्शन ज्ञान अनन्त सहित जो ।।अपूर्व।।

श्रीमद् राजचन्द्र हो गये हैं, उनकी खबर है। ववाणियाँ में हुए हैं। सात वर्ष की उम्र में जातिस्मरण हुआ था। सोलह वर्ष की उम्र में तो मोक्षमाला बनाई, जैसे माला में एक सौ आठ मोती होते हैं, वैसे ही इसमें-मोक्षमाला में एक सौ आठ पाठ हैं। उनकी शक्ति बहुत थी, बहुत क्षयोपशम ! तीन दिन में पूरी मोक्षमाला बना दी थी। आत्मा कहाँ सोलह वर्ष का है! वह तो अनादि-अनन्त है। मोक्षमाला में एक पाठ है कि-

मैं कौन हूँ, आया कहाँ से और मेरा रूप क्या।
सम्बन्ध दु:खमय कौन है, स्वीकृत करूँ परिहार क्या।।
इसका विचार विवेक पूर्वक, शान्त होकर कीजिये।
तो सर्व आत्मिक ज्ञान के सिद्धान्त का रस पीजिये ।।

उसका विचार विवेकपूर्वक अर्थात् राग से और विकल्प से भिन्न पढ़कर विचार करे तो आत्मा के सर्वभाव अनुभव में आवें। आत्मा शुद्ध चैतन्य आनन्दघन है -ऐसा ज्ञान में आ जाये।

यहाँ कहते हैं **"ताहि विलोकि नमे सिवगामी।"**

जिसको अपने ज्ञान में अपनी अनुभूति हुई है, वह अपने ज्ञान में सिद्धस्वरूप का अवलोकन करके सिद्ध को नमस्कार करता है।

सम्यग्दृष्टि-ज्ञानी इन सिद्ध को पहचानकर उन्हें नमस्कार करता है। णमो सिद्धाणं कहे, परन्तु सिद्ध के स्वरूप को पहिचाने नहीं, उसकी यह बात नहीं।

णमो अरिहंताणं- माने जिनने अरि अर्थात् राग द्वेष और अज्ञान को हरकर वीतरागता और केवलज्ञान प्रगट किया है, उन्हें अरिहन्त कहते हैं। अरिहन्त के चार कर्मों का नाश हुआ है और सिद्ध के आठों कर्मों का अभाव हुआ है। वे ज्ञानशरीरी हुए हैं, उन सिद्धों को बनारसीदासजी नमस्कार करते हैं। ज्ञान और आनन्द ही जिसका शरीर है, उसे जो निरन्तर अनुभवते हैं- ऐसे सिद्धों को नमस्कार करके मांगलिक किया।

अब जिनवाणी की स्तुति करते हैं। पहले देव की स्तुति की, अब जिनवाणी की स्तुति करते हैं और गुरु तो अमृतचन्द्राचार्य स्वयं ही हैं।

गुरु अमृतचन्द्राचार्य तीन चौकड़ी कषाय के अभाववाले नग्न दिगम्बर भावलिंगी संत थे। अष्टपाहुड़ में -दर्शनपाहुड़ में कहा है कि जिन्होंने अपनी वीतरागमूर्ति आत्मा का आश्रय लेकर तीन कषायों का अभाव किया है और बाह्य में नग्न दिगम्बर मुद्रा है, वह जैनदर्शन है। माल सहित बारदान की बात है, खाली बारदान की कोई कीमत नहीं है। अकेला नग्नपना या अट्ठाईस मूलगुणों का पालन, वह तो खाली बारदान जैसा है। अन्तर में सच्चिदानन्द प्रभु की दृष्टि, ज्ञान और स्थिरता प्रकट की हो तो वह माल सहित नग्न दिगम्बर दशा जैनदर्शन है। अमृतचन्द्राचार्य ऐसे ही भावलिंगी मुनि थे।

जिनवाणी की स्तुति

जोग धरै रहै जोगसौं भिन्न,
अनंत गुनातम केवलज्ञानी।
तासु हृदै-द्रहसौं निकसी,
सरितासम ह्वै श्रुत-सिंधु समानी।।
याते अनंत नयातम लच्छन,
सत्य स्वरूप सिधंत बखानी।

बुद्ध लखै न लखै दुरबुद्ध,
सदा जगमाँहि जगै जिनवानी।।3।।

अर्थः- अनंत गुणों के धारक केवलज्ञानी भगवान यद्यपि सयोगी हैं तथापि योगों से पृथक् हैं। उनके हृदयरूप द्रहसे नदीरूप जिनवाणी निकलकर शास्त्ररूप समुद्र में प्रवेश कर गई है, इससे सिद्धान्त में इसे सत्यस्वरूप और अनंतनयात्मक कहा है। इसे जैनधर्म के मर्मी सम्यग्दृष्टि जीव पहचानते हैं, मूर्ख मिथ्यादृष्टि लोग नहीं समझते। ऐसी जिनवाणी जगत में सदा जयवंत होवे।।3।।

काव्य - 3 पर प्रवचन

अब बनारसीदासजी जिनवाणी की स्तुति करते हैं-

'जोग धरै रहे जोग सों भिन्न, अनन्त गुणातम केवलज्ञानी' -जिन्होंने अरि यानी राग-द्वेष और अज्ञान का नाश करके अपने ज्ञान, दर्शन, आनन्द, वीर्य आदि अनन्त गुणों को पर्याय में प्रकट किया है- ऐसे अरिहन्त-सर्वज्ञ केवली भगवान के जोग यानी मन, वचन, काया का योग होता है फिर भी वे योग से भिन्न है- वस्तु योग से भिन्न है ऐसे प्रभु के अन्तर में से प्रवाहित वाणी, वह जिनवाणी है।

धर्मी को सम्यग्दर्शन में भी अनन्तगुण आंशिक व्यक्त ज्ञात होते हैं। वे ही गुण केवली के पूर्ण प्रकट हो जाते हैं। यद्यपि अरिहन्त केवली के शरीर है और मन, वचन, काया के सात योग भी हैं; फिर भी भगवान योग से ज्ञान का अनुभव नहीं करते, ज्ञान से ही सब जानते हैं। शरीर को, योगों को और अवशेष चार अघाति कर्मों को अपने ज्ञान द्वारा जानते हैं और लोकालोक को भी ज्ञान द्वारा जानते हैं।

तासु हृदै-द्रह सौं निकली, सरितासम पड़े श्रुत-सिन्धु-समानी, प्रभु के केवलज्ञानरूप सरोवर में से यह वाणीरूपी नदी निकली है। "वीर हिमाचल तैं निकसी गुरु गौतम के मुख कुण्ड ढरी है।" पूर्णज्ञान-आनन्दरूप सरोवर में से वाणीरूपी नदी निकली है। यह निमित्त से कथन है। कोई ज्ञान वाणी में

आता नहीं या वाणी ज्ञान में जाती नहीं, परन्तु जिन्हें पूर्णज्ञान प्रकट हुआ है –ऐसे सर्वज्ञ की वाणी भी ऐसी ही निकलती है। इसी कारण वाणी को 'सर्वज्ञ अनुसारिणी' कहकर पूज्य कही है। परमाणु की भाषारूप पर्याय ऐसी निकलती है कि जो स्व-पर को बताती है। वह ज्ञानसरोवर में से आती है- यह निमित्त से कथन किया है। आत्मा में वाणी नहीं भरी, वाणी तो जड़ है और आत्मा तो चैतन्यमूर्ति है।

भगवान की उस वाणी में से शास्त्रों की रचना हुई है। गणधर भगवान ग्यारह अंग और चौदहपूर्व(द्वादशांग) की रचना करते हैं। वाणीरूपी नदी इस श्रुत सिन्धु में समाई है। वह वाणी कैसी है कि अनन्त नयों के लक्षणवाली है। सिद्धान्त में उसे सत्यस्वरूप और अनन्त नययुक्त कहा है। वाणी अनन्त नयात्मक है।

जयधवल में नय के दो प्रकार कहे हैं- एक वास्तविक नय अर्थात् ज्ञान का अंश और वाणी, वह उपचरित नय है। यहाँ इस उपचारक नय की बात चलती है। जैसा सर्वज्ञ पद प्रकट हुआ वैसी वाणी निकलती है। वाणी तो वाणी के कारण निकलती है, परन्तु वह उस पद के योग्य ही होती है। जैसे कोई मनुष्य माँस नही खाता हो, शराब नहीं पीता हो, ब्रह्मचारी हो तो उसके मुख से- माँस खाने योग्य है या विषय सेवन योग्य है- ऐसी वाणी निकलती ही नहीं; क्योंकि अन्दर में जैसा भाव होता है, उसके अनुकूल ही वाणी का योग होता है।

ॐ ध्वनि निकलती है, उसके कर्त्ता भगवान नहीं है; परन्तु भगवान के ज्ञान के अनुरूप ही वाणी आती है। वह ॐ ध्वनि अनन्त नयस्वरूप है। ज्ञान के एक अंश को नय कहते हैं। वह अनन्त पदार्थों के एक अंश को अपने ज्ञान से जानता है।

'सत्य स्वरूप सिधंत बखानी' द्रव्य, नवतत्त्व, बंधमार्ग, मोक्षमार्ग आदि जैसे हैं, वैसे यथार्थरूप से जिनवाणी बताती है; अतः उसे सत्यस्वरूप कहा है। वीतराग की वाणी में वीतरागता ही आती है। राग करने योग्य है या राग

ठीक है- ऐसी वाणी जिनवाणी में नहीं आती। जैसे आत्मा में स्व-पर को जानने की ताकत है वैसे ही वाणी में स्व-पर को कहने की ताकत है। उस वाणी में से सिद्धान्त प्रकट हुए है।

"बुद्ध लखै न लखै दुरबुद्ध।" -सम्यग्ज्ञानी ही इस वाणी को यथार्थरूप से जानता है। श्रीमद्जी ने सोलह वर्ष की उम्र में मोक्षमाला लिखी है, उसमें जिनवाणी का वर्णन इसप्रकार किया है

अनन्त-अनन्त भाव भेद से भरेली भूली,
अनन्त-अनन्त नय निक्षेपे व्याख्यानी छे।
सकल जगत हितकारिणी हारिणी मोह,
तारिणी भवाब्धि मोक्ष चारिणी प्रमाणी छे।
उपमा आप्यानी तेने तमा राखवी ते व्यर्थ,
आपवानी निजमति मपाई में मानी छे।
अहो राजचन्द्र बाल ख्याल नथी पामता ए,
जिनेश्वर तनी वाणी जाणी तेने जाणी छे।

श्रीमद् द्वारा सोलह वर्ष की आयु में लिखी गयी यह वाणी की महिमा सामान्य जीवों को (आयु के आकड़े को उलटा करे तो) इकशठ वर्ष में भी समझना कठिन पड़ती है। प्रभु की वाणी अनन्त-अनन्त भाव के भेद-प्रकार से भरी हुई है। अनन्त नय स्वरूप है। सम्पूर्ण-जगत को हित का कारण है। मोह को नाश करनेवाली है। तारिणी भवाब्धि अर्थात् भव का अभाव कराने वाली है। संसार-समुद्र में से जीव को तिरा लेनेवाली है अनन्त सुखरूप मोक्ष को देनेवाली है, पूर्णता प्राप्त करानेवाली है। ऐसी प्रभु की वाणी को किसी की उपमा नहीं दी जा सकती है। उपमा देनेवाला स्वयं मप जाता है। बाल अर्थात् अज्ञानी वीतराग की वाणी का ख्याल नहीं पा सकते। जिनेश्वर की वाणी तो जिसने जानी उसी ने जानी है- ज्ञानी ही जानते हैं अज्ञानी नहीं जानते।

ज्ञानी ही जिनवाणी के मर्म को जान सकते हैं। अज्ञानी उसके मर्म को

शेष पृष्ठ 27 पर

प्रेरक-प्रसंग

अहिंसा का प्रभाव

जयपुर के तत्कालीन दीवान अमरचन्द अपनी कर्तव्यनिष्ठा, साहस और ईमानदारी के लिए सर्व विख्यात थे। वे निष्ठावान श्रावक होने के कारण अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह जैसे व्रतों और क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य एवं ब्रह्मचर्य जैसे आत्मीय धर्मों के प्रति पूर्ण समर्पित थे। राजसभा के अन्य सामन्तों को उनसे बड़ी ईर्ष्या थी। ईर्ष्यालु लोग सदैव दीवान अमरचन्दजी को नीचा दिखाने का अवसर तलाशते रहते थे।

महाराजा जयपुर के यहाँ एक शेर पाला हुआ था। उसे भोजन देने के समय कोई न कोई उच्च राज्याधिकारी उपस्थित रहता था। शेर मांसभक्षी होता है, अत: पूर्ण शाकाहारी दीवानजी इस कार्यक्रम में कभी उपस्थित नहीं हुए थे। मांसाहारी सरदारों को एक मौका मिला और उन्होंने शेर को भोजन देने के लिए अमरचन्दजी का नाम यह कहकर सुझाया कि देखें वह शेर को कैसे भोजन देंगे ?

कौतुकवश महाराज ने दीवानजी को आदेश दिया – 'शेर को भोजन देने कल आप जायें।'

राजाज्ञा मानकर दीवानजी ने एक हलवाई से बड़ा टोकरा भरकर जलेबी मँगवाई और शेर के पिंजरे को खुलवा कर, स्वयं टोकरा उठाकर भीतर घुसे। बड़ी गंभीर वाणी में उन्होंने शेर से कहा – 'वनराज! मांस आपका भोजन है और मांसाहारी स्वभाव भी है, परन्तु मैं अहिंसक जैन श्रावक हूँ। जो भोजन लाया हूँ, वह भी शाकाहारी है, आप इसे खावें। और यदि इसे नहीं खाते तो मैं किसी पशु को मारकर तो खिला नहीं सकता। हाँ, स्वयं प्रस्तुत हूँ, आप मुझे खा लें! यह कहकर वे शेर के पास बैठ गये।'

शेर अमरचन्दजी के शब्द समझा या नहीं, परंतु भाव अच्छी तरह

समझ गया। उसने टोकरे से जलेबियाँ खानी शुरु कर दीं। चकित रह गये दर्शक। दीवान अमरचंदजी की जय-जयकार सुनकर ईर्ष्यालु सामंतों के मुँह काले पड़ गये।

शिक्षा - नियम संयम का दृढ़तापूर्वक पालन करनेवाले तथा पवित्र भाववाले जीव सामनेवाले को भी अपने अनुकूल बना लेते हैं।

साभार : बोध कथायें

पृष्ठ 25 का शेष

नहीं जान सकते। वे अपनी कल्पना से अर्थ करते हैं, निश्चय-व्यवहार की अपेक्षा को नहीं समझते, बुध लखै न लखै दुरबुद्ध, बुध अर्थात् सम्यग्दृष्टि जिन-धर्म का मर्मी है। दुरबुद्ध अर्थात् मिथ्यादृष्टि जिनवाणी के मर्म को पहिचान नहीं सकता।

मुमुक्षुः- सबको मूर्ख कहा..... ?

पूज्य गुरुदेवश्रीः- जो समझें नहीं, वे सब मूर्ख हैं। जिनवाणी ही उसे कहते हैं कि जिसमें से वीतरागता का पोषण मिले और पूर्ण वीतरागता प्रकट हो। तब जो वीतरागता का पोषण न करे और राग का पोषण करे कि पहले राग करो व्यवहार धर्म करो फिर निश्चय, वह जिनवाणी के मर्म को नहीं समझता। जिनवाणी राग करने को कहती ही नहीं।

यहाँ तो वीतराग की वाणी क्या कहती है, उसकी परीक्षा करके समझना यह कठिन काम है। बहुत विचक्षणता चाहिए, तत्त्वज्ञानी ही उसे जान सकता है।

'सदा जगमाहिं जगै जिनवाणी' जिनवाणी-जगत में सदा जयवंत हो। देखो! यह जिनवाणी की स्तुति! वाणी तो वाणी है, उसमें कोई आत्मा का भाव नहीं भरा है, वह जड़भाव है; फिर भी उसमें वास्तविक वस्तु का स्वरूप कहने की ताकत विद्यमान है। ऐसी सर्वज्ञ की दिव्यध्वनि सदा जयवंत रहो।

क्रमशः

आचार्यदेव परिचय शृंखला

भगवान आचार्यदेव
श्री अमितगति (द्वितीय)

आप आचार्य अमितगति (प्रथम) के शिष्य परम्परा की द्वितीय पीढ़ी में हुए आचार्य अमितगति (द्वितीय) हैं। एक महान सरस्वती के भण्डारसमा आपने अपने मौलिक ग्रंथों द्वारा जिनधर्म को अक्षुण्ण बनाए रखा। आप माथुरसंघी होने पर भी जैनाभासी माथुरसंघी की परिपाटी के नहीं थे।

आपने अपनी गुरु-परम्परा निम्नानुसार बताई है।

आचार्य वीरसेन → आचार्य देवसेन → आचार्य अमितगति (प्रथम)→ आचार्य नेमिषेण → आचार्य माधवसेन → आचार्य अमितगति (द्वितीय) की भूरि-भूरि प्रशंसा अपने ग्रंथ में की है—इस पर से ज्ञात होता है, कि आपको गुरु के प्रति भक्ति-समर्पणभाव अद्‌भुत था।

आप राजा मुंज की सभा के 'वाचस्पतिराज' उपाधि से अलंकृत एक रत्न के रूप में स्वीकार किए गए थे। आप बहुश्रुत विद्वान थे। काव्य, न्याय, व्याकरण, आचारप्रभृति अध्यात्म आदि अनेक विषयों पर आपका प्रभुत्व था।

आपने अपने पंचसंग्रह ग्रंथ की रचना 'धार' से सात कोस दूर 'मसीदकिलौदा' अपरनाम 'मसूतिकापुर' गाँव में की थी। आपकी निम्न रचनाएँ प्रसिद्ध हैं।

(1) सुभाषितरत्नसंदोह, (2) धर्मपरीक्षा, (3) उपासकाचार, (4) पंचसंग्रह, (5) आराधना, (6) भावनाद्वाविंशतिका, (7) चन्द्र-प्रज्ञप्ति, (8) सार्द्धद्वयद्वीप-प्रज्ञाप्ति, (9) व्याख्या प्रज्ञप्ति, (10) उसके अलावा लघु एवं बृहत् सामायिक पाठ, अमितगति-श्रावकाचार आदि भी आपके ही रचित माने जाते हैं।

आपका समय राजा मुंज का काल होने से, आप ई. स. 983-1023 का प्रतीत होता है।

'सामायिक पाठ' के रचयिता आचार्य अमितगति (द्वितीय) को कोटि कोटि वंदन।

भगवान आचार्यदेव
श्री माणिक्यनन्दिजी

न्यायविषयक ग्रन्थ रचयिता आचार्यों में आचार्य माणिक्यनन्दिजी का अनुपम स्थान है। आप 'माणिक्यचन्द्रजी त्रिवैद्य' व 'महापण्डित माणिकचन्दजी' के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। आप जैन न्याय के महापण्डित थे। आप नंन्दिसंघ के प्रमुख आचार्यों में गिने जाते हैं, आपका प्रमुख स्थान धारानगरी के आसपास के जंगलों में गिना जाता है।

आपके गुरु का नाम रामनन्दी था व शिष्य का नाम नयननन्दि था। आपके पादकमल में ही, आचार्य प्रभाचन्द्रजी ने 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' रचा था—ऐसा इतिहासकारों का मानना है। शिलालेख में आपको 'जिनराज', न्यायदीपिका में आपको 'भगवान' व प्रमेयकमलमार्तण्ड़ में आपको 'गुरु' विशेषण से सम्बोधित किया है।

आप अपने विषय के इतने मर्मज्ञ थे; कि उस विषय को समझाने में आप अत्यंत पटु प्रतीत होते हैं। जिससे आपने अपना विषय तत्त्वार्थसूत्र की भांति अत्यंत परिमार्जित संस्कृत सूत्रों में किया है। आपने आचार्य अकलंकदेव के ग्रंथरूपी समुद्र का मंथन करके, उसके फलस्वरूप 'परीक्षामुख' रूप न्यायशास्त्ररूपी अमृत भव्य जीवों के पुण्य प्रताप से रचा है।

आपने एक मात्र 'परीक्षामुख' ग्रंथ की रचना की है। इस 'परीक्षामुख' ग्रंथ में आपके असाधारण वैदुष्य व न्याय विशेषज्ञता का परिचय होता है। इस ग्रंथ में से ऐसा भी प्रतीत होता है, कि आप जिनशासन के ग्रंथों के मर्मज्ञ तो थे ही, साथ में आप चार्वाक, बौद्ध, योग (न्याय, वैशेषिक), प्रभाकर, जैमिनीय और मीमांसक आदि के सिद्धान्तों के भी पूर्ण ज्ञाता थे। अत: कहा जाता है, कि जिस प्रकार रत्नों में बहुमूल्य 'माणिक्य' होता है, उसी भांति आपके 'परीक्षामुख' सूत्र माणिक्य-रत्न-राशि के समान हैं। जैसे नीतिवाक्य में कहा है, कि 'शैले शैले न माणिक्यम्, मौक्तिकम् न गजे गजे' अनुसार ही आपके परीक्षामुख के बारे में पाया जाता है।

आपने अपनी रचना का नाम 'परीक्षामुख' रखा है ; वह सार्थक ही है, क्योंकि— 'विरुद्ध नाना युक्तियों की प्रबलता व दुर्बलता अवधारण करने के लिए प्रवर्तमान विचार, वह परीक्षा है'—इस लक्षणानुसार आपने अपने ग्रंथ में प्रमाण व प्रमाणाभासों की सही परीक्षा की है; तथा 'मुख' का अर्थ प्रवेशद्वार है—उसी भांति यह ग्रंथ न्याय जैसे विषय में प्रवेश करने के लिए 'प्रवेशद्वार' समान है—अत: प्रतीत होता है कि आपने इस ग्रंथ का संपूर्णतया सार्थक नाम रखा है।

आपके इस ग्रंथ की टीका आचार्य प्रभाचन्द्रजी कृत 'प्रमेयकमल-मार्तण्ड' व आचार्य लघु अनन्तवीर्यजी कृत 'प्रमेयरत्नमाला' प्रमुख है।

आपका सयम ई. स. 1003 से 1028 प्रतीत होता है।

'परीक्षामुख' ग्रंथ के रचयिता आचार्य श्री माणिक्यनंदि भगवंत को कोटि कोटि वंदन।

मुनिराज की अन्तर-साधना

अतीन्द्रिय आनन्द में झूलनेवाले मुनिराज, छठवें-सातवें गुणस्थान में रहने के काल में भी आत्मशुद्धि की दशा में आगे बढ़े बिना, वहीं के वहीं नहीं रहते। छठवें-सातवें गुणस्थान में रहते हुए भी आत्मशुद्धि की दशा विकसित होती ही रहती है। केवलज्ञान न हो, तब तक मुनिराज शुद्धि की वृद्धि करते ही जाते हैं। **यह तो मुनिराज की अन्तर-साधना है; जगत के जीव मुनिराज की इस अन्तर-साधना को नहीं देख पाते।** साधना कोई बाह्य से देखने की वस्तु नहीं है, क्योंकि यह तो अन्तर की दशा है।

वन में अकेले विचरण करते हों, बाघ-सिंह की दहाड़ गूँजती हो, सिर पर जोरदार पानी बरसता हो व शरीर में रोग हो तो भी मुनिराज को इनका बिल्कुल भान नहीं रहता; वे तो अन्तर में एकाग्र रहते हैं — ऐसे मुनिराज की अन्तरशुद्धि तो वृद्धिगत होती ही है; अन्तर में शुद्धता के लिए चलनेवाला पुरुषार्थ भी उग्र होता जाता है। *(- जिणसासणं सव्वं, पृष्ठ ४०)*

जिस प्रकार–उसी प्रकार में छिपा रहस्य

जैसे– जंगल में वन का राजा सिंह अकेला भी शोभता है ।

वैसे ही– संसार में चैतन्य का राजा सम्यग्दृष्टि अकेला ही शोभता है।

जैसे– हजारों भेड़ों के समूह की अपेक्षा जंगल में अकेला सिंह भी शोभता है।

उसी प्रकार– जगत के लाखों जीवों में सम्यग्दृष्टि अकेला भी शोभता है।

जैसे– थाली चाहे सोने की हो परन्तु यदि उसमें जहर भरा है तो वह नहीं शोभता और खाने वाला मरता ही है।

उसी प्रकार– कोई जीव चाहे पुण्य के ठाठ में मध्य में पड़ा हो परन्तु यदि मिथ्यात्व रूपी जहर सहित है तो वह नही शोभता वह संसार में भव मरण कर ही रहा है।

जैसे– थाली चाहे लोहे की हो किन्तु उसमें अमृत भरा है तो वह वह शोभा पाती है और खाने वाले को तृप्ति देती है।

उसी प्रकार– चाहे प्रतिकूलता के समूह में पड़ा हो परन्तु जो जीव सम्यग्दर्शन रूपी अमृत से भरा हुआ है वह शोभता है वह आत्मा के परमसुख को अनुभवता है और अमृत जैसे सिद्धपद को प्राप्त करता है।

जिस प्रकार– बादल के हट जाने पर धूप और प्रकाश दोनो एक साथ प्रगट होते है।

उसी प्रकार– दर्शन मोहनीय कर्म के उपशम, क्षय या क्षयोपशम होने से सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान एक साथ उत्पन्न होते है। जिसके वे दोनो प्रगट हो जाते है वह भव्य अपने राग–द्वेष को दूर करने के लिए बुद्धिपूर्वक सम्यग्चारित्र धारण करता है।

जैसे– बिना मूल वृक्ष नहीं

वैसे– सम्यग्दर्शन बिना धर्म नहीं (आचर्य कुंद कुद अष्ट प्राभृत)

जैसे– एक कहावत है कि बकरी निकालते ऊँट प्रवेश कर गया। अर्थात छोटी हानि दूर की तो बड़ी हानि हो गयी

वैसे– पाप छोड़,पुण्य से धर्म होगा ऐसा भयानक मिथ्यात्व रूपी महापाप प्रवेश कर गया अर्थात् छोटा पाप छोड़ा बड़ा पाप आ गया।

जिस प्रकार– आम के पेड़ का बीज आम की गुठली होती है, होई कड़ती निम्बोली के बिज में से मधुर आम नहीं पकते

क्रमशः

संकलन – प्रो० पुरुषोत्तमकुमार जैन, रुड़की

समाचार-दर्शन

तीर्थधाम मङ्गलायतन का अठारहवाँ वार्षिकोत्सव सानन्द सम्पन्न

तीर्थधाम मङ्गलायतन : श्री आदिनाथ कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ के तत्त्वावधान में छह दिवसीय अठारहवाँ वार्षिकोत्सव सानन्द सम्पन्न हुआ। कार्यक्रम की शुरुआत पूजन प्रक्षाल विधान, पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का सीडी प्रवचन तत्पश्चात् पण्डित देवेंद्र जैन, बिजौलियां का अष्टपाहुड़ और बहिनश्री के वचनामृत पर स्वाध्याय; दोपहर में धवला वाचना तत्पश्चात् बच्चों की धार्मिक कक्षाएँ; सायंकाल भक्ति पश्चात् धार्मिक कक्षा, तत्पश्चात् बालब्रह्मचारी कल्पनाबेन के द्वारा मूलाचार वाचना का कार्यक्रम हुआ।

अन्तिम दिन 06 फरवरी 2021 को महामस्तकाभिषेक का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

अहो भाव योजना

अत्यन्त हर्ष है कि पूज्य गुरुदेवश्री ने सभी ग्रन्थों (चारों अनुयोग) का दोहन करके, मुमुक्षुओं के हितार्थ, निरंतर 45 वर्षों तक अपनी अमृतमयी वाणी, प्रवाहित की है। गुरुदेवश्री ने पूरे वस्तुस्वरूप एवं चारों अनुयोगों की विषयवस्तु के साथ ही 'पंच–परमेष्ठी' भगवंतों की महिमा बताई है। पूज्य गुरुदेवश्री निरंतर स्वयं निर्ग्रन्थ दीक्षा लेने की भावना भाते थे और अपने हर प्रवचन में उन्होंने, दिगम्बर मुनिराजों के गीत बारंबार गाये हैं। मुनिराजों के स्वरूप का वर्णन करते हुए, उनकी आंखों में आंसू भी आ जाते थे।

श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई एवं **तीर्थधाम मङ्गलायतन,** अलीगढ़ ने अपनी सहयोगी संस्थाओं को साथ लेकर, एक बड़ा संकल्प किया है और वो यह कि पूज्य गुरुदेवश्री के उपलब्ध न्यूनाधिक दस हजार प्रवचनों में, जिसमें चारों ही अनुयोग समाहित हैं व उनके हिन्दी एवं गुजराती के शब्दशः प्रवचनों में मुनि–भगवंतों के सम्बन्ध में, जो उनके उद्‌गार व्यक्त हुए हैं, उन उद्‌गारों को एक सुनियोजितरूप में प्रकाशित करके, एक ग्रन्थ बनाया जाए। इस महायज्ञ में पूरे विश्व के मुमुक्षुओं की आहूति पड़े – यह हमारी भावना है।

हमें निरंतर महाविद्यालय, विद्यालयों, मुमुक्षु मण्डल एवं देश के कोने–कोने से मुमुक्षु भाई–बहिनों द्वारा निरंतर अहो भाव प्राप्त हो रहे हैं। एतदर्थ आप सभी का धन्यवाद!

और भी जो भाई–बहिन हमें इस कार्य में लगे हैं वे हमें शीघ्र ही ईमेल, डाक या दिए गए व्हाट्सएप पर भी फोटो भी भेज सकते हैं।

हमें विश्वास है कि आप जिनधर्म प्रभावना के इस महायज्ञ में अपनी आहूति अवश्य अर्पण करेंगे।

षट्खण्डागम ग्रन्थ की वाचना

तीर्थधाम मङ्गलायतन में प्रथम बार, प्रथम श्रुत स्कन्ध '**षट्खण्डागम धवला टीका सहित**' वाचना का कार्यक्रम, मार्गशीर्ष पंचमी, शनिवार 5 दिसम्बर 2020 से अनवरत प्रारम्भ है।

विद्वत् समागम – विदुषी बालब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन, जयपुर एवं स्थानीय विद्वान पण्डित अशोक लुहाड़िया, पण्डित सुधीर शास्त्री, पण्डित सचिन जैन, पण्डित सचिन्द्र शास्त्री का लाभ प्राप्त होता है।

दोपहर – 01.30 से 03.15 तक (प्रतिदिन)

सायंकाल 07.30 से 09.00 बजे तक मूलाचार ग्रन्थ का स्वाध्याय

नोट—इस कार्यक्रम में आप ZOOM ID-9121984198,

Password - 1008 के माध्यम से भी शामिल हो सकते हैं।

वैराग्यसमाचार

मुम्बई : श्रीमती शारदाबेन शान्तिलालभाई शाह का शान्तपरिणाम से देह-परिवर्तन हो गया है। आप धर्मप्राण-नारीरत्न थीं। आपके सुसंस्कारों के प्रभाव से आपका सम्पूर्ण परिवार पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के अनन्य-अनुयायी रहते हुए वीतरागी जिनधर्म की मंगल प्रभावना में विगत कई दशकों से समर्पित है। मुम्बई के विश्वविख्यात पारला-दिगम्बर जिनमन्दिर की स्थापना में आपका अनन्य-योगदान रहा है। जिनशासन की प्रभावना एवं साधर्मी-वात्सल्य के क्षेत्र में आपका जीवन समर्पित रहा है। आप श्रीमान निमेषभाई शाह एवं श्रीमान केतनभाई शाह की मातुश्री एवं मामाश्री अनन्तभाई अमुलकजी सेठ की ज्येष्ठ बहिन थीं।

दिल्ली : श्रीमती कस्तूरीदेवी का शान्तपरिणाम से देह-परिवर्तन हो गया है। आप बालब्रह्मचारी पण्डित अभिनन्दनजी, खनियांधाना की बड़ी बहिन थीं।

मोरबी : श्री इन्दुभाई रतिभाई संधवी का शान्तपरिणाम से देह-परिवर्तन हो गया है।

दिवंगत आत्मा शीघ्र ही मोक्षमार्ग प्रशस्त कर अभ्युदय को प्राप्त हो—ऐसी भावना मङ्गलायतन परिवार व्यक्त करता है।

आचार्यकल्प पण्डितप्रवर टोडरमलजी की 300वीं जन्म-जयन्ती के अवसर पर, श्री टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर द्वारा आयोजित

'जन्म-जयन्ती वार्षिक महोत्सव' विशाल ज्ञानयज्ञ में

श्री कुन्दकुन्द-कहान-पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई एवं

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ द्वारा

ग्रन्थकर्ता के चरणों में

भावभीनी आहूति

'मोक्षमार्गप्रकाशक' ग्रन्थ सेट

संक्षिप्त परिचय

आचार्यकल्प पण्डितप्रवर टोडरमलजी के त्रिशताब्दी जन्मजयन्ती के पावन अवसर पर, उनकी अनुपम कृति **'मोक्षमार्गप्रकाशक'**, उसी के आधार पर **'श्री मोक्षमार्गप्रकाशक प्रश्नोत्तरी'**, **'श्री मोक्षमार्गप्रकाशक दृष्टान्तवैभव'** में समागत सारभूत दृष्टान्तों एवं सिद्धान्तों पर आधारित कृति प्रस्तुत करते हुए हमें अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। नवीन पाठकों को मूल ग्रन्थ के अध्ययन की प्रेरणा जागृत हो, इस उपलक्ष्य में सभी स्वाध्याय भवनों, मुमुक्षु संस्थाओं एवं प्रवचनकार विद्वानों को नि:शुल्क सप्रेम भेंट स्वरूप प्रदान किया जा रहा है।

मोक्षमार्गप्रकाशक – तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा द्वितीय बार आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी द्वारा विरचित मोक्षमार्गप्रकाशक की मूल हस्तलिखित प्रति से पुन: मिलान करके, आधुनिक खड़ी बोली में प्रकाशित हुआ है।

मोक्षमार्गप्रकाशक प्रश्नोत्तरी – प्रस्तुत प्रश्नोत्तरमाला में प्रत्येक अधिकार के आधार पर हैडिंग के अनुसार प्रश्नोत्तर का विभाजन किया गया है। जहाँ-जहाँ विषयवस्तु की दृष्टि से गरिष्ठता लगी, वहाँ उन विषयों को विशेष स्पष्ट किया गया है।

मोक्षमार्गप्रकाशक दृष्टान्त वैभव – जिनागम में गहन सिद्धान्तों को सहज हृदयग्राह्य बनाने के पावन उद्देश्य से, सुगम दृष्टान्तों की परम्परा रही है। इन्हीं दृष्टान्त-सिद्धान्त के माध्यम से पण्डितप्रवर टोडरमलजी ने जनसामान्य को जिनागम के गूढ़ सिद्धान्त सरल रीति से समझाये हैं। ऐसे अनेक दृष्टान्तपूर्वक जिनागम के आधारभूत सिद्धान्तों को चित्रित करके कृति को रोचक बनाने का प्रयास किया गया है।

'मोक्षमार्गप्रकाशक', 'श्री मोक्षमार्गप्रकाशक प्रश्नोत्तरी', 'श्री मोक्षमार्गप्रकाशक दृष्टान्तवैभव' का सेट

मँगाने का फार्म

नाम.....

.....

पता .....

.....

..... पिन कोड .....

संस्था / मन्दिर का नाम .....

.....

संस्था / मन्दिर के प्रमुख का नाम .....

.....

मोबाइल ..... ई-मेल .....

आप, हमारे ग्रन्थमाला के सम्माननीय सदस्य हैं / नहीं .....

प्रतियों की संख्या .....

नोट - ग्रन्थ की उपलब्धता के अनुसार ही आपको भेंट किए जाएँगे। आप अपना फार्म भरकर ईमेल कर देवें।

हस्ताक्षर

. . . . . .

ग्रन्थ मँगाने का पता—

प्रकाशन विभाग, तीर्थधाम मङ्गलायतन, अलीगढ़-आगरा राजमार्ग,
सासनी-204216 (हाथरस) उत्तरप्रदेश

सम्पर्क सूत्र-9997996346 (कार्या०); 9756633800 (पण्डित सुधीर शास्त्री)

Email : info@mangalayatan.com; website : www.mangalayatan.com

वैराग्य वर्षा

अरे रे! मुझे कहाँ तक यह जन्म-मरण करने हैं। इस भव-भ्रमण का कहीं अन्त है या नहीं? इस प्रकार जब तक चौरासी के अवतार का भय नहीं होता, तब तक आत्मा की प्रीति नहीं होती। 'भय बिना प्रीति नहीं' अर्थात् भव-भ्रमण का भय हुए बिना, आत्मा की प्रीति नहीं होती। सच्ची समझ ही विश्राम है। अनन्त काल से संसार में परिभ्रमण करते हुए कहीं विश्राम प्राप्त नहीं हुआ है। अब सच्ची समझ करना ही आत्मा का विश्राम है।

देखो, यह जीव एक सर्प देखने पर कितना अधिक भयभीत होता है क्योंकि इसे शरीर के प्रति ममत्व और प्रीति है। अरे! प्राणी को एक शरीर पर सर्प के डंसने का इतना भय है तो अनन्त जन्म-मरण का भय क्यों नहीं है? आत्मा की समझ बिना अनन्त अवतार के दु:ख खड़े हैं, इस बात का तुझे भय क्यों नहीं है? अरे! यह भव पूरा हुआ, वहीं दूसरा भव तैयार है; इस प्रकार एक के बाद दूसरा भव, तू अनन्त काल से कर रहा है। आत्मा स्वयं सच्ची समझ न करे तो जन्म-मरण का अभाव नहीं होता।

अरे रे! जिसे चौरासी के अवतार का डर नहीं है, वह जीव आत्मा को समझने की प्रीति नहीं करता। अरे! मुझे अब चौरासी के अवतार का परिभ्रमण किस प्रकार मिटे? - ऐसा अन्दर में भव-भ्रमण का भय लगे तो आत्मा की दरकार करके सच्ची समझ का प्रयत्न करे।

देखो, यह जीव करोड़ों रुपये की आमदनीवाला सेठ तो अनन्त बार हुआ है और अनन्त बार ही घर-घर जाकर भीख माँगकर पेट भरनेवाला भिखारी भी हुआ है; आत्मा के भान बिना पुण्य करके बड़ा देव भी अनन्त बार हुआ है और पाप करके नारकी भी अनन्त बार हुआ है परन्तु अभी भी इसे भव-भ्रमण से थकान नहीं लगती है। आचार्यदेव कहते हैं कि भाई! 'अब मुझे भव नहीं चाहिए' - इस प्रकार यदि तुझे भव-भ्रमण से थकान लगी हो तो आत्मा की प्रीति करके उसका स्वरूप समझ! इसके अतिरिक्त अन्य कोई शरण नहीं है।

Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

स्वर्णिम अवसर—

भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन में प्रवेश हेतु

तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा संचालित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के आगामी सत्र में अंग्रेजी माध्यम से कक्षा सातवीं पास कर चुके एवं कक्षा आठवीं के लिए भी सुनहरा अवसर है जो भी छात्र यहाँ के सुरम्य वातावरण में उच्चस्तरीय लौकिक शिक्षा के साथ-साथ धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा का भी लाभ प्राप्त करना चाहते हैं, वे हमारे कार्यालय अथवा वेबसाइट से प्रवेश आवेदन-पत्र मंगाकर अपेक्षित जानकारियों एवं प्रपत्रों के साथ भरकर भेज देवें।

विदित हो कि कम से कम 60 प्रतिशत या उससे अधिक अंक प्राप्त विद्यार्थी ही आवेदन योग्य हैं, स्थान सीमित हैं। अतः शीघ्र ही पूर्ण जानकारी प्राप्त कर आवेदन-पत्र भेजने का अनुरोध है।

कोरियर द्वारा - **तीर्थधाम मङ्गलायतन**
(प्रवेश फार्म, भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन)
C/o विमलांचल, हरिनगर, गोपालपुरी, अलीगढ़ (उ.प्र.) 202001
सम्पर्क सूत्र-9997996346 (कार्या०); 9756633800 (पण्डित सुधीर शास्त्री)
Email : info@mangalayatan.com;
website : www.mangalayatan.com

पं. सं. : DELBIL/2001/4685
स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक पवन जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। सम्पादक : डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन।

मङ्गलायतन
श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)
Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust
Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)
Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22
info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com